कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेष के परिहार से।
होती मनोगुप्ति श्रमण को, कथन नय व्यवहार से॥६६॥

टीका : यह, व्यवहारमनोगुप्ति के स्वरूप का कथन है। नीचे नोट। व्यवहारचारित्र का अधिकार है न? जिसे अन्तर में आत्मदर्शन, शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप का जिसे अन्तर में भान हो गया है; तदुपरान्त जिसकी स्वरूप में स्थिरता, चारित्र की कितनी ही स्थिरता हुई है; उसे ऐसी मनोगुप्ति व्यवहार से हो सकती है। मनोगुप्ति का विकल्प है। **मुनि को मुनित्वोचित...** नोट में (फुटनोट में) मुनि की व्याख्या है। वास्तविक मुनिपना कैसा होता है, उसमें व्यवहार कैसा होता है? जिसने अन्तरस्वरूप आनन्दस्वरूप की प्राप्ति की है। सम्यग्दर्शन में आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसी आत्मा की उपलब्धि-प्राप्ति की है। तदुपरान्त स्वरूप में शान्ति और स्थिरता की कितनी ही जागृति हुई है, उसे अशुभ से गोपकर शुभभाव होता है, उसे व्यवहार मनोगुप्ति कहते हैं। इतनी शर्तों सहित।

यह **मुनि को मुनित्वोचित...** उसके योग्य **शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ...** अर्थात् कि आत्मा पवित्र आनन्द है, उसकी अवस्था / परिणति शुद्ध तो हुई है। सम्यग्दर्शन में भी आत्मा आनन्द है, उसकी शुद्ध अवस्था थोड़ी हुई है; मुनि को विशेष शुद्ध अवस्था हुई है। आनन्द और शान्ति की पवित्रता उन्हें बहुत परिणमित हो गयी है। आहाहा! उन्हें

---

१. प्रत्यय = आस्रव; कारण। (संसार के कारणों से आत्मा का गोपन-रक्षण करना सो गुप्ति है। भावपापास्रव तथा भावपुण्यास्रव संसार के कारण हैं।)

साथ वर्तता हुआ... ऐसी शुद्धदशा के साथ रहनेवाला **(हठरहित) मन-आश्रित,...** भाव शुभोपयोग **वचन-आश्रित अथवा काय-आश्रित शुभोपयोग,...** राग। **शुभोपयोग, उसे व्यवहारगुप्ति कहा जाता है,...** लो! व्यवहारगुप्ति, वचनगुप्ति, मन को अशुभ से गोपा है और शुभ में प्रवर्तता है।

क्योंकि शुभोपयोग में मन, वचन या काय के साथ अशुभोपयोगरूप युक्तता नहीं है। ऐसा। इसलिए गुप्ति, ऐसा कहते हैं। शुभराग में अशुभराग नहीं है। शुद्धपरिणति न हो, जहाँ पहले आत्मा की पवित्रता— श्रद्धा-ज्ञान और शान्तिरूप परिणमन न हो, उसका शुभोपयोग जो होता है, वह हठसहित होता है। वह शुभोपयोग, व्यवहारगुप्ति भी नहीं कहलाता। आहाहा! क्या कहा? कि व्यवहारगुप्ति उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा का आनन्द और ज्ञान और पवित्रता की प्रभुता श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति में परिणमित हुई है। स्वभाव के आश्रय से वीतरागी परिणति, वीतरागी अवस्था हुई है, उसे हठरहित अशुभ से गोपनरूप मन का शुभभाव, उसे व्यवहारगुप्ति कहा जाता है; परन्तु जिसे उस शुद्धपरिणति का अनुभव ही नहीं, जिसे आत्मा-आनन्द की शुद्धपरिणति ही प्रगट नहीं हुई, ऐसे अज्ञानी के शुभभाव को... वह तो हठवाला शुभभाव है, इसलिए उसे व्यवहारगुप्ति भी नहीं कहा जाता। आहाहा! भारी शर्तें। ऐसा मार्ग है, भाई! इसे, मार्ग क्या है - ऐसा जानना तो पड़ेगा न? क्योंकि आत्मा का सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान और उसका चारित्र, वह मुक्ति का कारण है। स्वरूप में रमणता, आनन्द में रमणता, चरना-रमना-जमना, आनन्द का अनुभव करना, ऐसा जो चारित्र होता है, उसे सच्चा चारित्र और मुक्ति का कारण कहते हैं। ऐसी चारित्रदशा में शुद्धोपयोगरूप परिणमन जब न हो, तब उसे ऐसा अशुभ से गोपनरूप शुभ के भावरूप शुभोपयोगरूप मन व्यवहार से गुप्ति कहलाती है। चेतन का अरूपी मधुर जिसका आनन्द स्वाद है। आहाहा! आता है न? यह नीचे (फुट) नोट की व्याख्या हुई।

अब **क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों से क्षुब्ध हुआ चित्त, सो कलुषता है।** पहले कलुषता की व्याख्या है। मलिन परिणाम। क्रोध, मान, कपट और लोभ, इन चार कषायों से कम्पायमान, अस्थिर हुई क्षुब्धता, ऐसा चित्त, उसे कलुषता कहते हैं। व्याख्या करते हैं। यह कलुषता तो अशुभभाव है, उसे छोड़ना। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के कितने ही भावसहित ऐसे कलुषभाव को मन में (से) छोड़ना और शुभभाव का होना, उसे मन की व्यवहारगुप्ति कहने में आता है।

पश्चात् **दर्शनमोह और चारित्रमोह—ऐसे (दो) भेदों के कारण मोह दो प्रकार का है।** ऐसे देखो तो चारित्र के भाग में कोई भी राग नहीं, ऐसा कहा। दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों इसमें आ गये। शुभ और अशुभराग दोनों इसमें आ जाते हैं। परन्तु इसकी व्याख्या लेना, और चारित्रमोह में तो राग शुभ भी आ जाता है और अशुभ भी आ जाता है। अब इन दो की निवृत्ति तो निश्चयमनोगुप्ति हुई, परन्तु उसमें से अशुभ का त्याग लेना। शैली तो यह सब है। राग-द्वेषादि अशुभभावन। इसलिए टीका भी उसी प्रकार की है। उसमें से अशुभभाव ऐसा नहीं। यह अशुभभावन, ऐसा है। ऐसे जो अशुभभाव, उन्हें छोड़ना। छोड़ना और यह सब व्यवहार है न?

आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा—ऐसे (चार) भेदों के... यह तो अशुभभाव ही है। ये चार तो अशुभभाव ही हैं। चारित्रमोह में तो अभी शुभराग भी आ जाता है, परन्तु उसमें से अशुभराग को छोड़ना और शुभराग में रहना, उसे यहाँ व्यवहार -मनोगुप्ति कहते हैं। रहना अर्थात् है, ऐसा। आहाहा! एक ओर सम्यग्दृष्टि शुभ-अशुभराग से मुक्त है। आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा भान होने पर सम्यग्दृष्टि शुभ-अशुभ विकल्प से तो भिन्न ही है परन्तु यहाँ चारित्र की अपेक्षा से अस्थिरता का जो भाव, उसके दो भाग। शुभ की और अशुभ की... इस अशुभ की अस्थिरता छोड़कर शुभ में रहता है। ज्ञान करता है कि यह भाव है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है न? उसे यहाँ व्यवहार से मनोगुप्ति कहा जाता है।

आहारसंज्ञा,... हों! आहार करने का विकल्प है, वह संज्ञा नहीं। आहार करने का विकल्प है, वह संज्ञा नहीं। वह तो अशुभभाव है। मुनि को आहार लेने की वृत्ति होती है। वैसे तो शास्त्र इन्कार करते हैं कि अशुभभाव तो उन्हें होते ही नहीं अर्थात् आहारसंज्ञा वह तो गृद्धि बताती है। वह गृद्धि उन्हें नहीं होती। आहार लेने का भाव, वह आहारसंज्ञा है- ऐसा नहीं है। समझ में आया?

प्रशस्तराग और अप्रशस्तराग—ऐसे (दो) भेदों के कारण राग दो प्रकार का है। एक शुभराग और एक अशुभराग। उसमें से अशुभराग को छोड़ना और शुभराग में व्यवहार कहलाता है, उसे मनोगुप्ति कहने में आता है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं, इत्यादि सबको छोड़ना। ये सब अशुभ परिणाम हैं। ध्वनि तो यह है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी गड़बड़ी नहीं चलती। यहाँ तो पाठ तो स्पष्ट छोड़ना ऐसा कहता है परन्तु इसका अर्थ इतना करना। अशुभ छोड़ना और शुभ में होवे, इतनी बात है। बस। बात होवे, वैसे आयेगी न? उल्टी-सीधी कुछ होगी? पाठ ऐसा है न? देखो न! इसमें ऐसा कहाँ कहा! **रागद्दोसाइअसुहभावाणं** ऐसा शब्द है न? स्पष्ट पाठ है, परन्तु उसमें से ऐसा लेना। उसमें जो अशुभभाव है, उसे छोड़ना, इतनी बात है। पाठ वापस व्यवहार है न? पाठ वापस व्यवहारनय और **ववहार-णयेण परिकहियं** ऐसा। इसका अर्थ कि अशुभ को छोड़ने पर शुभ रहता है, उसे व्यवहार से मनोगुप्ति है। बस, इतनी ही बात है। उसमें कोई दूसरा उल्टा-सीधा चले ऐसा नहीं है। समझ में आया? उस राग के दो प्रकार किये। इतना यहाँ लेना चाहिए परन्तु वे दोनों छोड़े हैं। दोनों छोड़े तब तो निश्चयमनोगुप्ति हो जाए। यहाँ पाठ व्यवहारनय का है। उसमें जो समुचित हो, उसका अर्थ होना चाहिए न।

द्वेष की व्याख्या। **असह्य जनों के प्रति...** ऐसे मनुष्य हों कि ऐसी कठोर गाली दे, मार मारे, ऐसे के प्रति द्वेष, ऐसे के प्रति उसे वैर के परिणाम द्वेष, वह छोड़ देना। ऐसे मनुष्य होते हैं न? ऐसी गाली दे, बिच्छु के डंक जैसा मारे। आंकरा मारे ऐसे कठोर शब्द कहे, उनका द्वेष नहीं करना, तो भी उनके प्रति द्वेष, वैर के परिणाम नहीं हों। **अथवा असह्य पदार्थसमूहों के प्रति...** दोनों। असह्य जनों और असह्य पदार्थ। बाहर में सहन न हो, ऐसे काँटे, लोहे के पत्र, कितने ही होते हैं न। जमीन में अन्दर पत्र चिपट हो। अब टक्कर लगे, वह तो उखड़े नहीं और यहाँ चमड़ी उखाड़ दे। फिर उस पर द्वेष करे। जमीन में गहरा पत्थर चिपटा होता है न? बाहर में जरा निकला हुआ हो। वह जरा ऐसे ठोकर मारे तो निकल जाए। क्या निकले? वह तो गहरा होवे न, अंगूठे से मारने जाए तो अंगूठा छिल जाए। उस पदार्थ के प्रति द्वेष (नहीं) करे, ऐसा कहते हैं। काँटे होते हैं, देखो न! यह बबूल के, क्या कहलाते हैं यह गोरडा के। ऐसे चुभें कि उन बबूल के काँटों पर द्वेष करे, कहते हैं मुनि ऐसे द्वेष का त्याग करते हैं।

वैर का परिणाम, वह द्वेष है।—इत्यादि... पाठ है सही न, इसलिए तद्नुसार ही टीका की है। **अशुभपरिणामप्रत्ययों का...** अशुभ परिणामरूपी आस्रवों का परिहार।

उसमें से इतना लेना। सम्यग्दर्शन शुद्ध है, तीन कषाय के अभाव का चारित्र भी शुद्ध है, उनकी भूमिका में उन्हें अशुभ से छूटकर योग्य शुभराग होता है, उसे यहाँ मनोगुप्ति व्यवहार से कहते हैं। पाठ में ऐसा लिया न **द्दोसाइअसुहभावाणं परिहारो ववहार-णयेण परिकहियं** पाठ स्वयं ऐसा बोलता है। फिर टीका तत्प्रमाण करनी पड़े न? परन्तु इसका अर्थ ऐसा ले लेना।

फिर अर्थ किया है **(अर्थात् अशुभपरिणामरूप भावपापास्त्रवों का त्याग)...** अशुभपरिणाम भावपापास्त्रव। पूर्ण आस्त्रव का त्याग हो जाए, तब तो निश्चयगुप्ति हो जाती है। पाप के परिणाम का त्याग, स्वरूप की दृष्टि और चारित्र की भूमिका और शुभपरिणाम का भाव आवे, उसे व्यवहारनय के अभिप्राय से मनोगुप्ति कही है। लो, अब जरा नीचे इसका अर्थ देखें तो नीचे आएगा। पाठ अशुभपरिणाम प्रत्ययों का परिहार है। अब नीचे अर्थ में वापस पाप-पुण्यास्त्रव भी डाला है।

प्रत्यय = आस्त्रव; कारण। (संसार के कारणों से आत्मा का गोपन-रक्षण करना सो गुप्ति है।) यह निश्चय का अर्थ। **(भावपापास्त्रव तथा भावपुण्यास्त्रव संसार के कारण हैं।)** दोनों से गोपन, वह निश्चयगुप्ति है और पापास्त्रव से गुप्ति, वह व्यवहारगुप्ति है। आहाहा! लोगों को शास्त्र का अभ्यास घट गया है और इसके बिना सब लगा रखा है। वास्तविक तत्त्व क्या है? किस प्रकार परिणाम हैं? शुभ क्या है? शुद्ध क्या है? त्रिकाली शुद्ध क्या है? उसके वास्तविक द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान बिना ऐसे के ऐसे चल निकलते हैं, चारित्र और दीक्षा, दख्या है। वह बेचार दख्या है। कुन्दकुन्दाचार्य की कितनी स्पष्ट बात है।

भावपुण्यास्त्रव और भावपापास्त्रव दोनों बन्ध के कारण हैं। उन दोनों को छोड़े तो निश्चयगुप्ति कहलाये। सम्यग्दर्शन तो है, सम्यग्ज्ञान है, तीन कषाय के अभाव का चारित्र भी है। उसमें पाप के परिणाम छोड़े तो व्यवहारगुप्ति कहलाये और पुण्य-पाप छोड़कर सातवीं भूमिका में जाए तो निश्चयगुप्ति कहलाये। गजब! दीक्षा ले, इसलिए उसे छह काय के बोल और नव तत्त्व और ऐसा सिखाने लगे। दण्डक की गतागति। उसका भी कितनों को ठिकाना नहीं होता। हमारे एक 'अंजवालीबाई' थे। उमराला के भावसार। अंजवालीबाई थे। वरवाला में दीक्षा नहीं ली थी? अंजवालीबाई थे। व्याख्यान बहुत करे और लोग बेचारे यह भोंठ जैसे हों। ये बनिये अभी के क्या हैं? गढडा में, उसकी आठ वर्ष की दीक्षा। उसमें

मैं दुकान छोड़कर वहाँ आठ महीने रहा था। पश्चात् उसने वहाँ तो वोराण्यो, दीवालीबाई, वे विशाश्रीमाली थे न तुम्हारे नागनेस के हैं। विशाश्रीमाली। उपाश्रय के बाहर दुकान थी। उसके गोराणी थे। उसे बेचारे को कुछ आता नहीं। आठ वर्ष की दीक्षा (संवत्) १९६० में दीक्षा ली। १९६९ में मैं गया। इसलिए वह .... कहे, भाई! कानजीभाई! इसे गति के बोल सिखाओ। अब वह आठ वर्ष से व्याख्यान पढ़े। गतागति के बोल, थोकड़ा आता है न? वह तो हमने पहले १९६८ में सीखे थे। इसलिए १९६९ में आठ महीने रहे थे। फिर जो नीचे बैठ कहे,... गोराणी कहे। कानजीभाई! नीचे बैठे तू नीचे बैठ। सीखना है तो कुछ कोई पटिये पर बैठे और ये नीचे बैठें, ऐसे सीखा जाता है? भावसार था। अंजवालीबाई थे। हमारे गाँव के थे। उमराला के थे। संघवी भावसार थे, पोरबन्दर रहते थे। उनके बड़े भाई की बहू। परन्तु आठ वर्ष से तो गतागती के थोकड़ा मुझे से सीखे थे। देखो! यह कितना चलता है उस सम्प्रदाय में। ओहोहो! मुझे उस समय ऐसा लगा था, परन्तु यह पढ़ते हैं, क्यों पढ़ें, कैसा पढ़ें, यह बोल सीखे हुए हों। वे क्या कहलाते हैं अलावा... ... अलग निकाले हों। .... के बोल हों न उसमें से ले। .... वे सीखे हों, वह पढ़े। अब गतागती की खबर नहीं होती। कहाँ से कौन जाए? आठ वर्ष की बात है। उसे मूल बात ऐसी हो गयी कि बस, वस्त्र बदलकर हो जाओ त्यागी। अभी तत्त्व क्या है, श्रद्धा-ज्ञान तो एक ओर रहा, परन्तु व्यवहार का ज्ञान (कि) यह जीव कहाँ जाए और कहाँ से आवे और क्या हो, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं **व्यवहारनय के अभिप्राय से मनोगुप्ति है।** ऐसा कहा न? पाठ में ऐसा है न, अभिप्राय अधिक डाला। **व्यवहारनयाभिप्रायेण** आहाहा! सम्यग्दर्शन आत्मा के भानपूर्वक सच्चा चारित्र वर्तता हो, उसे शुद्धोपयोग का जब अभाव हो, तब उसे ऐसा शुभभाव होता है। उसे व्यवहार मनोगुप्ति कहने में आता है। उस शुभ से भी छूटकर शुद्धोपयोग में रमे, वह तो निश्चयमनोगुप्ति हो गयी। यह व्यवहारमनोगुप्ति आस्रव का कारण है, उससे पुण्यास्रव आवे। मन को अशुभ से गोपना, उससे पुण्यास्रव आवे; धर्म नहीं। आहाहा!

श्लोक-९१

अब ६६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(वसन्ततिलका)

गुप्तिर्भविष्यति सदा परमागमार्थ–
चिन्तासनाथमनसो विजितेन्द्रियस्य।
बाह्यान्तरङ्गपरिषङ्गविवर्जितस्य,
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणस्मरणान्वितस्य ।।९१।।

(वीरछन्द)

जो परमागम कथित अर्थ का चिन्तक अरु विजितेन्द्रिय है।
बाह्याभ्यन्तर संगरहित, जिनपद ध्याता को गुप्ति कहें॥ ९१॥

[श्लोकार्थः—] जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है, जो विजितेन्द्रिय है (अर्थात् जिसने इन्द्रियों को विशेषरूप से जीता है), जो बाह्य तथा अभ्यन्तर सङ्गरहित है और जो श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है, उसे सदा गुप्ति होती है।

श्लोक-९१ पर प्रवचन

अब ६६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं — ९१ वाँ श्लोक

गुप्तिर्भविष्यति सदा परमागमार्थ–
चिन्तासनाथमनसो विजितेन्द्रियस्य।
बाह्यान्तरङ्गपरिषङ्गविवर्जितस्य,
श्रीमज्जिनेन्द्रचरणस्मरणान्वितस्य ।।९१।।

व्यवहार डाला है, लो।

जो मुनि, सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दर्शनी, सम्यक्चारित्री **जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है,...** भाषा देखी ? परमागम। सर्वज्ञ से कथित, परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहे हुए परमागम। समझ में आया ? उसमें **जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है,...** है शुभविकल्प। देखो ! भगवान के नहीं कहे हुए ऐसे शास्त्रों की यहाँ बात नहीं ली है क्योंकि उसकी वस्तु की दृष्टि ही मिथ्या है। परमागम। लो, अपने इसका नाम भी परमागममन्दिर है न ? कोई कल पूछता था, कब बनेगा ? क्या खबर पड़े कब बनेगा ? अपने को क्या खबर पड़े, इसमें किस जगह है। बीस महीने हो गये। वजुभाई क्या करे अन्दर जलते हों तो भी। यह कोई कल पूछता था। दो वर्ष में होगा ? होवे तब ठीक। परन्तु यह परमागम आया न ?

परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त... यह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, चारित्रसहित को शुभविकल्प और शुभराग (आवे वह) व्यवहारमनोगुप्ति कहने में आता है। शास्त्र का चिन्तवन, शास्त्र का वाँचन, शास्त्र में मन को रोके, उसका नाम शुभभाव है। मुनि को भी... वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित हों उन्हें। जिन्हें मिथ्या आगम की श्रद्धा है, उस आगम के मिथ्या साधु की श्रद्धा है, उसे तो दर्शन ही जहाँ सच्चा नहीं, वहाँ चारित्र तो होता नहीं। इसलिए उसे मनोगुप्ति व्यवहार से भी नहीं होती। आहाहा ! भारी शर्तें, भाई !

जिसका मन... वीतराग परमेश्वर के कहे हुए परमागम की चिन्ता, उनके अर्थों की विचारने में रुकता है, वह शुभभाव है। वह शुभभाव है। अब उसमें ऐसा कहा कि स्वाध्याय करे तो असंख्यगुनी निर्जरा होती है। ऐई ! धवल में (ऐसा आता है)। वे उसे सामने रखते हैं। आता है या नहीं ? धवल में ऐसा आता है। यहाँ कहते हैं कि उस परमागम का चिन्तवन करे, वह शुभभाव है, ऐसा कहते हैं। वहाँ तो अन्दर आनन्दस्वरूप में-ध्येय में एकाग्रता है, उसके लक्ष्य से स्वाध्याय करता है। विकल्प से भले हो परन्तु जोर है स्वभावसन्मुख का। उसके कारण निर्जरा होती है। यह शुभभाव तो चिन्तवन है। परमागम की विचारणा का विकल्प है, लोग ये डालते है। यह लोग कहे, यह डाले और वह हमारा डालते नहीं, फिर ऐसा कहे। भाई ! स्मरण करते हैं, नहीं डालते कहाँ ? ऐई !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परमागम में कहीं कहा है। स्वाध्याय करते हुए असंख्यगुनी

निर्जरा कही है। यहाँ परमागम का चिन्तवन करने से शुभभाव कहा है। वह तो स्वाध्याय में स्व का आश्रय है, उसके लक्ष्य से, शुद्धि के लक्ष्य से होता है। वह तो प्रवचनसार में नहीं कहा? ज्ञान के लक्ष्य से ज्ञेयों का ज्ञान करना। आता है न? भाई! प्रवचनसार, ज्ञान अधिकार पूरा हुआ।.... अन्तर में आत्मा का ज्ञान हुआ है, इसके लक्ष्य से अब ज्ञेय, छह द्रव्य आदि का लेते हैं। यहाँ दर्शन का अधिकार है। ज्ञेय अधिकार कहो, दर्शन अधिकार कहो, इसके वाँचन-श्रवण में उपयोग जुड़ता है आत्मा में। उसकी प्रतीति से आत्मा का चिन्तवन, शास्त्र का चिन्तवन करता है, तो उसे स्व के आश्रय से निर्जरा होती है। यहाँ पर का अकेला विकल्प है, इतनी बात लेनी है।

जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तन... क्या कहते हैं? ऐसे अर्थ, शब्दों का भाव, विचारने में मन (रुकता है)।

मुमुक्षु : तो मुनियों को अर्थ नहीं आता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है परन्तु विशेष, स्वाध्याय करते हुए विशेष है या नहीं? ... आता है न। चाहे जितना हो, सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस-तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करते हैं, लो।

मुमुक्षु : वह तो चौथे गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान में, तो भी उसका पार नहीं आता, ऐसी स्वाध्याय। तैंतीस सागर किसे कहते हैं? एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष। एक पल्य के असंख्यातवें भाग में। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्यात अरब वर्ष, ऐसे-ऐसे असंख्यगुने पल्योपम, ऐसे दस कोड़ाकोड़ी का एक सागरोपम, उसकी तैंतीस सागर की स्थिति सर्वार्थसिद्धि के देव की है। अभी एकावतारी है। स्वर्ग का देव सर्वार्थसिद्धि में है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है। यह तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करते हैं। शुभविकल्प है। वहाँ उन्हें कोई स्त्री नहीं, व्यापार नहीं। आहाहा! देव इकट्ठे होकर स्वाध्याय किया करते हैं, चर्चा-वार्ता। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, धन्धा नहीं, दुकान नहीं, तारटपाल नहीं, वकालात की पढ़ाई नहीं। वकालात के नियम निकालना वह कुछ वहाँ है? आहाहा! तो भी अन्त में अन्दर जाकर मुनि होऊँगा और

वीतरागता प्रगट करके श्रेणी माँडूगा, तब केवलज्ञान होगा। इस कारण से (स्वाध्याय आदि से) केवल (ज्ञान) होगा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव सिद्ध करना है न? यह शुभभाव है, ऐसा। एकावतारी है। एक भव में मोक्ष जानेवाले असंख्यात देव सर्वार्थसिद्धि में हैं। मुनि-भावलिंगी सन्त थे, वे वहाँ जाते हैं। अकेले समकिती नहीं जा सकते। समकितसहित चारित्र हो, ऐसे वहाँ एकावतारी होकर सर्वार्थसिद्धि में असंख्यात देव हैं। सब एकवतारी हैं। एक ही भव अन्तिम मनुष्य का देह। तैंतीस सागर तक स्वाध्याय करें, परन्तु वह शुभोपयोग है, ऐसा कहना है। जितना स्व का लक्ष्य रहता है, उतनी वहाँ निर्जरा होती है। कहते हैं कि धर्मात्मा मुनि की व्याख्या है न अभी तो?

जिसका मन परमागम के अर्थों के चिन्तनयुक्त है, जो विजितेन्द्रिय है (अर्थात् जिसने इन्द्रियों को विशेषरूप से जीता है),... जो इंदियेजिणित्ता... जो बाह्य तथा अभ्यन्तर संगरहित है... लो, तो भी यहाँ उसे व्यवहार कहेंगे। **और जो श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है,...** अहो! जिनेश्वरदेव वीतरागपरमात्मा सर्वज्ञ अरिहन्तदेव वीतराग ऐसे होते हैं, उनका जिसे स्मरण वर्तता है। याद करे तो वीतराग को याद करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **श्री जिनेन्द्रचरण के स्मरण से संयुक्त है,...** सहित है, देखा? यही स्मरण है। अहो! जिनने वीतरागता प्रगट की है, जिन्हें राग का अंश रहा नहीं ऐसे जिनेन्द्रदेव का मुनियों को भी शुभभाव में स्मरण वर्तता है।

उसे सदा गुप्ति होती है। लो! उसे यह व्यवहारगुप्ति होती है। व्यवहारगुप्ति की बात है न यहाँ तो? क्योंकि जिनेन्द्र का स्मरण है, परमागम के अर्थ का चिन्तवन है तो देव और शास्त्र दो आ गये। गुरु तो स्वयं है। यह बात आ गयी। बाह्य और अभ्यन्तर संगरहित हैं। दिगम्बर सन्तों की कथनी कोई अलौकिक है। एक-एक भाव में परम रहस्य भरा हुआ है। **उसे सदा गुप्ति होती है।** देखो! निश्चयगुप्ति तो होती है परन्तु साथ में यह शुभराग, वह व्यवहारगुप्ति है, ऐसा। जितनी रागरहित परिणति हो गयी है, वह तो निश्चयगुप्ति है परन्तु जो व्यवहार है, उसकी गुप्ति हुई नहीं। इसलिए उसका भाव व्यवहार कहने में आता है।

६७ गाथा।

गाथा-६७

थीराजचोरभत्तकहादि-वयणस्स पाव-हेउस्स।
परिहारो वयगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा।।६७।।

स्त्रीराजचौरभक्तकथादि-वचनस्य पापहेतोः।
परिहारो वाग्गुप्तिरलीकादिनिवृत्तिवचनं वा।।६७।।

इह वाग्गुप्तिस्वरूपमुक्तम्। अतिप्रवृद्धकामैः कामुकजनैः स्त्रीणां संयोगविप्रलम्भजनित-विविधवचनरचना कर्तव्या श्रोतव्या च सैव स्त्रीकथा। राज्ञां युद्धहेतूपन्यासो राजकथाप्रपञ्चः। चौराणां चौरप्रयोगकथनं चौरकथाविधानम्। अतिप्रवृद्धभोजनप्रीत्या विचित्रमण्डकावली-खण्डदधिखण्डसिताशनपानप्रशन्सा भक्तकथा। आसामपि कथानां परिहारो वाग्गुप्तिः। अलीकनिवृत्तिश्च वाग्गुप्तिः। अन्येषां अप्रशस्तवचसां निवृत्तिरेव वा वाग्गुप्तिः इति।

तथा चोक्तं श्रीपूज्यपादस्वामिभिः ह्न

(अनुष्टुप्)

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।।

तथाहि ह्न

जो पापकारण चोर, भोजन, राज दारा की कथा।
एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचन की गुप्ति का॥६७॥

गाथार्थ :—[पापहेतोः] पाप के हेतुभूत ऐसे [स्त्रीराजचौरभक्तकथादि-वचनस्य] स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा, भक्तकथा इत्यादिरूप वचनों का [परिहारः] परिहार [वा] अथवा [अलीकादिनिवृत्तिवचनं] असत्यादिक की निवृत्तिवाले वचन, [वाग्गुप्तिः] वह वचनगुप्ति है।

टीका : यहाँ वचनगुप्ति का स्वरूप कहा है।

जिन्हें काम अति वृद्धि को प्राप्त हुआ हो—ऐसे कामी जनों द्वारा की जानेवाली और सुनी जानेवाली—ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित विविध वचनरचना (स्त्रियों सम्बन्धी बात), वही स्त्रीकथा है; राजाओं का युद्धहेतुक कथन (अर्थात् राजाओं द्वारा किये जानेवाले युद्धादिक का कथन), वह राजकथाप्रपञ्च है; चोरों का चोरप्रयोग कथन, वह चोरकथाविधान है (अर्थात् चोरों द्वारा किये जानेवाले चोरी के प्रयोगों की बात वह चोरकथा है); अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की प्रीति द्वारा मैदा की पूरी और शक्कर, दही-शक्कर, मिसरी इत्यादि अनेक प्रकार के अशन-पान की प्रशंसा, वह भक्तकथा (भोजनकथा) है। — इन समस्त कथाओं का परिहार, सो वचनगुप्ति है। असत्य की निवृत्ति भी वचनगुप्ति है। अथवा (असत्य उपरान्त) अन्य प्रशस्त वचनों की निवृत्ति, वही वचनगुप्ति है।

इस प्रकार (आचार्यवर) श्री पूज्यपादस्वामी ने (समाधितन्त्र में १७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

इस प्रकार बहिरङ्ग वचन को तजकर अन्तर्वचन अशेष।
यही योग परमात्म-प्रकाशक दीपक है कहते संक्षेप॥

श्लोकार्थ : इस प्रकार बहिर्वचनों को त्यागकर अन्तर्वचनों को अशेषतः (सम्पूर्ण रूप से) त्यागना—यह संक्षेप से योग (अर्थात् समाधि) है जो कि योग परमात्मा का प्रदीप है (अर्थात् परमात्मा को प्रकाशित करनेवाला दीपक है)।

गाथा-६७ पर प्रवचन

अब वचनगुप्ति का स्वरूप। पहले मनोगुप्ति का स्वरूप कहा।

थीराजचोरभत्तकहादि-वयणस्स पाव-हेउस्स।
परिहारो वयगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा ।।६७।।

जो पापकारण चोर, भोजन, राज दारा की कथा।
एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचन की गुप्ति का॥६७॥

आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि राग के त्याग का कर्ता भी आत्मा नहीं है, ऐसा

उसका स्वरूप ही है। राग का त्याग कर्ता कहना, वह भी व्यवहारनय का कथन है। लो, इस त्याग का यह। आत्मा राग का त्याग करता है, वह भी एक व्यवहारनय का कथन अन्यथा है, ऐसा कहते हैं। परमार्थ से देखें तो भगवान आत्मा राग के त्याग का कर्ता भी नहीं है। राग के भाव का कर्ता तो नहीं परन्तु उसके त्याग का कर्ता नहीं। आहाहा! यहाँ कहना है कि वचन का त्याग करे। यह सब व्यवहारनय के कथन हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : विरोध नहीं आया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध बिल्कुल नहीं। दो नय का कथन ही विरुद्ध होता है। दो नय के कथन ही विरुद्ध हैं। दो नय किसके पड़े? आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है '**एवं मृषा-परिहार**' त्यागगुप्ति वचन की कहो। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, राग का त्याग आत्मा नहीं करता। क्या त्याग करे? स्वरूप में आनन्द में पड़ा है, वहाँ राग उत्पन्न नहीं होता, इसका नाम राग (का) त्याग करता है, यह व्यवहार के कथन हैं। आहाहा! भारी कठिन। यहाँ कहते हैं कि वचन का त्याग करे। इसका अर्थ वाणी। तो वाणी का त्याग कब है कि बोलने में अशुभभाव नहीं तो उसने उस प्रकार की वाणी का त्याग किया, ऐसा कहा जाता है। वाणी का त्याग असद्भूतव्यवहारनय कहा है? आत्मा वाणी कहाँ बोलता है और वाणी को आत्मा कहाँ छोड़ता है? मैं मौन रहूँ। मौन कौन रहे? आत्मा वाणी बोल सकता है? वाणी होना रोक सकता है? आहाहा!

टीका : यहाँ वचनगुप्ति का स्वरूप कहा है। लो, स्त्रीकथा की व्याख्या करते हैं। ऐसी स्त्रीकथा, मुनि अशुभभाव को छोड़ देते है, ऐसा कहते हैं। **जिन्हें काम अति वृद्धि को प्राप्त हुआ हो...** जिन्हें काम की वासना अतिवृद्धि को प्राप्त हुई हो **ऐसे कामी जनों द्वारा की जानेवाली और सुनी जानेवाली—ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित विविध वचनरचना...** ऐसी जो स्त्रियों की संयोगवियोगजनित। ऐसी स्त्री का संग हो, ऐसी स्त्री न हो तो ऐसा हो, ऐसी **विविध वचनरचना (स्त्रियों सम्बन्धी बात), वही स्त्रीकथा है;...** आहाहा! मुनि को ऐसी स्त्रीकथा नहीं होती। आहाहा! मुनि को स्त्री का परिचय ही नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? फिर उसे सिखाना, आधे घण्टे दो गाथा सीखो। यह

धन्धा तेरा ? यह तो स्त्रीकथा विशेष हो गयी। राग और प्रेम... आहाहा! ऐसा भाव मुनि को नहीं होता।

राजाओं का युद्धहेतुक कथन... राजकथा। युद्ध में ऐसे लड़ाई हुई, ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। आहाहा! **(अर्थात् राजाओं द्वारा किये जानेवाले युद्धादिक का कथन), वह राजकथाप्रपञ्च है;...** राजकथा का प्रपंच मुनि छोड़ देते हैं। उन्हें व्यवहारवचनगुप्ति कहा जाता है। राजकथाप्रपंच। देखो न! अभी बँगले का कुछ होता है न, लेख... लेख... लेख इतना आता है। उसमें भी आता है। जैनपत्रों में। सर्वत्र मारा-मारी है। परस्पर में मुसलमान काट डालते हैं। कोई देशवाले ने वापस कुछ किया। युद्ध के शस्त्र विमान में आते थे, उसमें केनाडा ने नहीं जाने दिया, उसे शाबासी दी। ऐसा उसमें कुछ आया था। आहाहा! यह सब प्रसन्न होते हैं, यह होता है, वह सब पापकथा है। इसने उसे हथियार दिये, इस हथियार से लड़ता है, ऐसा है, इसलिए इसकी जय होगी। अब धूल में जय किसे कहना ? आहाहा! लोगों का संहार, बालक का संहार कुकर्म होता है। ऐसी युद्ध की कथा का त्याग करे। मुनि ऐसी कथा में पड़े नहीं। यहाँ तो शास्त्र की कथा करना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! शास्त्र का स्वाध्याय, व्याख्यान। समकित सहित ज्ञानी को, हों! वह भी व्यख्यान आदि का शुभभाव है। वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्जरा तो होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी निर्जरा नहीं है। शुभभाव से निर्जरा होगी ? परन्तु उस समय उस प्रकार का विकल्प होता है। प्रभु का मार्ग तो निवृत्ति मार्ग है। आहाहा! ऐसे राग से भी निवर्तना, ऐसा स्वभावमार्ग है। समझ में आया ? परन्तु कहते हैं कि इतना न हो तो वह परमागम आदि की स्वाध्याय में मन को रोके। आहाहा! मार्ग से मार्ग समझ में आये।

चोरों का चोरप्रयोग कथन,... चोर ऐसे संताप, फिर ऐसे हो, फिर ऐसा हो, ऐसी बातें आवे तो सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। **चोरप्रयोग कथन, वह चोरकथाविधान है (अर्थात् चोरों द्वारा किये जानेवाले चोरी के प्रयोगों की बात...)** पहले ऐसा करना, फिर ऐसा करना, ऐसा करना। ऐसी विकथायें, पाप कथा है। यह ढालसागर को पढ़ते हैं न, उसमें ही सब प्रसन्न हो जाते हैं। रावण को मारा ऐसा है, अमुक को ऐसे मारा। कल अब रावण को राम मारेंगे। वार्ता कहते थे। वहाँ वे अरे! ऐसी की ऐसी बातें। ढालसागर पढ़ते

हैं। ढालसागर तब नहीं कहा था? फिर नाम आया। ढालसागर कहलाता है। यह कृष्ण की बात हो उसे ढालसागर कहते हैं और राम की बात को रामराज कहा जाता है। तब कहा था न, (संवत्) १९७० के वर्ष में अषाढ़ शुक्ल १५, आज चौदश है, तब शुरु की थी। ढालसागर। बोटाद में रतनसिंह भावसार पटेल थे। महाराज! नीचे आना। अब सब विकथा है। बड़ा रगड़ा खींचना और इकट्ठा करना। अरे! इतनी सामायिक तो हो न, परन्तु सामायिक... इसमें ऐसी विकथा सुने।

मुमुक्षु : बैठे न उतनी देर सामायिक में।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी बार बैठे। आहाहा! उसने ऐसा मारा, उसने ऐसा मारा, उसने ऐसा किया, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। ये सब विकथाएँ मुनि नहीं करते। वे पापवृत्ति को छोड़ देते हैं। आहाहा!

अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की... कथा आती है। **प्रीति द्वारा मैदा की पूरी और शक्कर,...** पोची ऐसी मैदा की पूरी थी और शक्कर और खाण्ड, ओहोहो! परन्तु अब क्या है? सब पाप कथा है। आहाहा! **अति वृद्धि को प्राप्त भोजन की प्रीति...** ऐसा कहते हैं। किसकी? **मैदा की पूरी और शक्कर, दही-शक्कर,...** ऐसा बढ़िया श्रीखण्ड हो। ऐसा दही... उसमें शक्कर डालकर... श्रीखण्ड। परन्तु अब है क्या? विष्टा है। छह घण्टे बाद उसकी विष्टा होगी। विष्टा का पूर्वरूप है यह। आहाहा! उसकी इतनी प्रीति क्या? उसका उत्साह। आज तो ऐसा था। आज तो मैसूर और अरबी के (भुजिया) थे, हों! ओहो! तेल में तो तले परन्तु यह तो घी में तले हुए और ऐसे लाल किये हुए। अरबी के पत्ते होते हैं न? उन्हें अरबी के पान कहते हैं न? उन पर आटा लगाकर फिर छुरी से टुकड़े करे। टुकड़ा करनेवाला गजब होशियार था। ठीक से किये। अर र र! बापू! ऐसी बात! आत्मा के आनन्द की बात छोड़कर अथवा परमागम के चिन्तवन के अर्थ छोड़कर ऐसी कथाएँ मुनि को नहीं होती। खाने की बात तुच्छ है। वह तुच्छ नहीं कहा श्रीमद् ने? ऐसी तुच्छ वार्ता धर्मात्मा को नहीं होती।

दही-शक्कर, मिसरी इत्यादि अनेक प्रकार के अशन-पान की प्रशंसा,... ऐसा आहार हो। बढ़िया पानी हो, मौसम्बी का, अनार का, क्या कहलाता है, वह बढ़िया अनार का? दिल्ली के... दिल्ली के अनार बड़े आते हैं। ऐसे बड़े दाने। वहाँ रखते हैं। पड़े हो

उसमें से थोड़ा-थोड़ा खाये। मजा करे। बड़े.. बड़े.. अरे! ऐसी तेरी धूल की बातें? ऐसी विकथा। **प्रशंसा, वह भक्तकथा (भोजनकथा) है।—इन समस्त कथाओं का परिहार, सो वचनगुप्ति है। असत्य की निवृत्ति भी वचनगुप्ति है।** झूठ बोलने की निवृत्ति और सत्य बोलना, वह भी एक निवृत्ति है। **अथवा (असत्य उपरान्त) अन्य प्रशस्त वचनों की निवृत्ति,...** खराब वचन ऐसे। जिन वचनों से परिणाम खराब हों, ऐसे वचनों की निवृत्ति, वह भी एक वचनगुप्ति है। व्यवहार वचनगुप्ति है। आत्मा को पूछे, आत्मा को पढ़े, आत्मा की कथा करे, वह कथा भी एक शुभराग है। समझ में आया? उसमें भी उसे व्यवहार वचनगुप्ति कहा जाता है। पाठ में अशुभ में नहीं जाता, इस अपेक्षा से। वचनगुप्ति की व्याख्या हुई।

इस प्रकार (आचार्यवर) श्री पूज्यपादस्वामी ने (समाधितन्त्र में १७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।।

यह निश्चय है। यह निश्चय की बात है।

इस प्रकार बहिर्वचनों को त्यागकर... भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें जोड़ दे न! यहाँ कहाँ व्यर्थ का जोड़ा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अन्तर्वचनों को अशेषतः...** अन्तर के जल्प-विकल्प को भी सर्वथा छोड़कर **अशेषतः...** अर्थात् सब प्रकार से, पूर्णरूप से **यह संक्षेप से योग (अर्थात् समाधि) है...** वह यह संक्षेप से समाधि है। समाधि। 'समाधि वर मुत्तमं दिंतु'—ऐसा लोगस्स में नहीं आता? अर्थ की खबर नहीं होती। पहाड़े बोलते हैं। 'समाधि वर मुत्तमं दिंतु चंदेश निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा' जाओ, खड़े हो जाओ प्रतिक्रमण हो गया। समाधि... समाधि... समाधि...। आधि—मन के संकल्प से रहित; व्याधि—शरीर की व्याधि से रहित; उपाधि—बाहर के संयोग से रहित। आत्मा की अन्तर शान्ति, समाधि—**जो कि योग परमात्मा का प्रदीप है...** लो! आत्मा आनन्दस्वरूप में जुड़ान करना, मन का संग छोड़ना, वाणी का संग छोड़ना, स्वभाव का संग करना। आहाहा! शुद्ध आनन्द का धाम भगवान का संग करना। असंग का संग, ऐसा जो योग। स्वरूप की एकाग्रता, वह **परमात्मा का प्रदीप है (अर्थात्**

परमात्मा को प्रकाशित करनेवाला दीपक है)। सम्यग्ज्ञान के नेत्र द्वारा, समाधि द्वारा आत्मा को देखे, वह परमात्मा का प्रकाशित करनेवाला दीपक है। पुण्य-पाप के विकल्प में कुछ परमात्मा का विकास नहीं होता, ऐसा कहते हैं। पाठ ही है न, देखो न!

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ऐसा कहते हैं कि वाणी का योग, विकल्प है, वह भी कहीं आत्मा का प्रकाश करने में कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। वचनगुप्ति में डाला है न यह? चाहे जैसा स्वाध्याय करे, उपदेश करे, वह तो वस्तु का विकल्प है। आहाहा! आत्मा में जुड़ान कर देना, वही परमात्मा का प्रकाश करनेवाला योग है कि जिसे यहाँ समाधि की शान्ति कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)